शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 दिसम्बर 2013

सूरदास और भक्ति रस

तरूणा दाधीच, शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
वनस्थली विद्यापीठ राजस्थान, भारत

शोध संक्षेप

मानव-मन में अनेक भाव विद्यमान होते हैं, परन्तु कोमलकान्त भाव प्रेम के साथ जब श्रद्धा-भाव का भी समन्वय हो जाता है, तब जिस नई भावना का प्रादुर्भाव होता है उसे भक्ति भाव या रस कहा जाता है। प्रेम में साधारण तथा समानता का भाव होता है, उसमें कुछ-कुछ वासना भी रहा करती है। इसी कारण प्रेमी युगल हर क्षण एक-दूसरे के समीप रहना चाहते हैं। परन्तु श्रद्धा में श्रद्धेय के प्रति अपने से, श्रेष्ठ होने और इस कारण पूज्य या आदरणीय होने का भाव-विचार रहा करता है। इस प्रकार जब समानतामूलक समीपता (प्रेम) और श्रेष्ठता-पूज्यता (श्रद्धा) मूलक भाव एकमेव हो जाते हैं, तब भक्ति भाव का उदय माना जाता है। भक्ति-भावना का यही महत्त्व है कि वह मन में सहृदयता उत्पन्न करती है, असत् प्रवृत्ति दूर करती है, मन का मालिन्य दूर करती है। भक्त कवि सूरदास के काव्य में भी व्यंजित भक्ति-भावना इसी प्रकार के गन्तव्यों तक हमें पहुंचाती है। प्रस्तुत शोध पत्र में सूर की भक्ति भावना पर गया है।

प्रस्तावना

मध्यकालीन कविता का पाट बहुत चौड़ा है। कई शताब्दियों की बहुरंगी बहुआयामी रचनाशीलता उसके दायरे में आती है। मध्यकाल संक्रान्ति का काल है - राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संक्रान्ति का काल। मध्यकाल का प्रारम्भ ही भारत में इस्लाम के आगमन से होता है। भारत की धरती पर पहली बार इस्लाम की राजनीतिक सत्ता कायम होती है। इसके परिणामस्वरूप देश का राजनीतिक वातावरण ही नहीं सामाजिक, सांस्कृतिक वातावरण भी संक्षुब्ध और उद्वेलित होता हैं। सदियों से चले आ रहे भारतीय समाज और भारतीय सामाजिक संरचना को पहली बार एक ऐसी चुनौती मिलती है जिसका उसके पूर्व उसे कोई अनुभव नहीं था। वर्षों से भारत में आक्रमणकारी जातियों और कबीले आते रहे । भारत में आकर ये जातियां समाज में पूरी तरह घुल-मिल जाती थी। किन्तु इस्लाम के रूप में जो प्रतिद्वन्द्वी भारत में प्रविष्ट हुआ उसकी प्रकृति और चरित्र अन्य जातियों से भिन्न था। क्योंकि उसके पास अपना स्वयं का धर्म, अपनी संस्कृति और अपनी विशिष्ट सामाजिक पहचान थी। चले आ रहे भारतीय समाज को उसने न केवल उद्वेलित किया, उस पर अपने प्रभाव के गहरे निशान भी छोड़े। इस्लाम आगमन के फलस्वरूप भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में परिवर्तन आये। इस्लामी आक्रमण से पराभूत हताश भारतीयों की प्रवृत्ति धार्मिक आस्थाओं और विश्वासों पर होने लगी। फलस्वरूप भक्ति-आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ।

भक्तिकाल की पृष्ठभूमि

भक्ति आन्दोलन मध्ययुग की एक महान सांस्कृतिक घटना है, भक्ति-काव्य जिसकी सबसे सार्थक फलश्रुति है। मध्यकाल में जिस भक्ति आन्दोलन का उदय हुआ, तीन शताब्दियों से भी अधिक समय तक समूचे भारत को अपनी परिधि में समेटते हुए उसकी अन्तर्धाराएं प्रवाहित होती रही। इस कालखण्ड में मुख्य रूप से भक्ति की दो धाराएं समानान्तर रूप में प्रवाहित होती रही। एक निर्गुण भक्ति धारा और दूसरी सगुण भक्ति धारा। पहली भक्ति धारा के साधकों ने ईश्वर को निर्गुण-निराकार मानकर ज्ञान-प्रेम के द्वारा प्रभु-भक्ति करने का महत्त्व प्रतिपादित किया और बल दिया, जबकि सगुण भक्ति धारा के भक्त ईश्वर को साकार मानकर उसके माधुर्य और मर्यादा भावों की भक्ति करने को महत्व एवं बल देते हैं। सगुणवाद निगुर्णवाद का विरोधी नहीं। दोनों में मूल अन्तर आकार को लेकर है। निर्गुणवादी ईश्वर को निराकार ही मानते हैं, जबकि सगुणवादियों की मान्यता है कि मूलतः निर्गुण-निराकार ब्रहम ही आवश्यकता पड़ने पर सगुण-साकार हुआ करता है। सामान्यजन उस सगुण-साकार विग्रह को ही आदर्श मानकर अपना ध्यान उसके रूपाकार में केन्द्रित कर सहज भाव से इसकी भक्ति करके उससे आत्मसाक्षात्कार कर सकता है। कविवर और भक्त प्रवर सूरदास की भक्ति-भावना सगुण-साकारवाद पर आधारित एवं इसी पर विश्वास करने वाली है। शिवकुमार मिश्र का कहना है कि "भक्तिकाव्य की मूलवर्ती चेतना मानवतावादी-जनवादी चेतना ही है, और इस मानवतावादी चेतना से विच्छिन्न करके भक्ति-आन्दोलन, भक्तिकाव्य तथा सूरदास और उनकी कविता को नहीं पहचाना जा सकता।"

हिन्दी-साहित्याकाश को अपनी रस-सिक्त वाणी एवं अलौकिक प्रतिभा से सूर्यवत् ज्योतित करने वाले भक्त और कवि सूरदास मध्यकाल में चलने वाली सगुण भक्तिधारा की कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख एवं प्रतिनिधि कवि स्वीकार किये जाते हैं। यह कृष्ण भक्ति के अन्यतम् साधक तो थे ही, कृष्ण काव्य के भी अनन्यतम साधक व गायक थे। कृष्ण भक्ति के प्रवर्तक आचार्य वल्लभ के प्रमुख विषय एवं सुपुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ द्वारा प्रतिष्ठापित 'अष्टछाप' के भी सूरदास प्रमुख और प्रतिनिधि साधक व कवि थे। इनके जन्म और जीवन-परिचय आदि को लेकर विद्वान इतिहासकारों में मतभेद पाया जाता है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' नामक रचना के अनुसार ये रणकता क्षेत्र के निवासी तथा जन्मान्ध थे। परवर्ती अनुसंधानकर्ताओं ने सीहीं नामक स्थान को जन्म स्थान माना। 'खंजन-नयन' में उपन्यासकार अमृत लाल नागर ने सीहीं जन्म स्थान मानकर जन्मान्ध बताया है।

इनके नाम को लेकर भी मतभेद व्याप्त है। कहा जाता है कि मात्र छः वर्ष की अवस्था में ही बालक सूरदास मधुर स्वरों में स्वरचित पद सुनाकर सभी को विस्मय-विमुग्ध कर देते थे। उन्होंने आठ वर्ष की अवस्था में गृह त्याग दिया था। और देशाटन के दौरान इनकी काव्य प्रतिभा, स्वर की मधुरता और ज्योतिषविद्या का सर्वत्र यश फैल रहा था। काशी के गऊघाट पर पुष्टिमार्ग सिद्धान्तों के प्रचारक महाप्रभु वल्लभाचार्य जी से इनकी भेंट हुई। आचार्य वल्लभ ने जब सूर के पद सुने तब विशेष सराहना की और कहा "जो सूर हवै के ऐसो कहो को घिघियात है।" कछु भागवत लीला का वर्णन

करो।' सुनकर सूरदास ने जब लीलाओं के ज्ञान के प्रति अपनी अनभिज्ञता प्रकट की तो आचार्य ने तत्काल ज्ञान करा देने का आश्वासन देकर सूरदास के कान में अपने सम्प्रदाय का आठ अक्षरों वाला मंत्र 'श्रीकृष्णः शरणं मम' पढ़कर उन्हें अपने सम्प्रदाय में दीक्षित कर लिया। इसके बाद श्री मद्भागवत के दशमस्कंध की अनुक्रमणिका और 'पुरूषोत्तम सहस्त्रनाम' सुनाया। यह सब सुनने से भक्त प्रवर और कविवर सूरदास को भागवत-तत्त्व एवं कृष्ण लीलाओं का समग्र ज्ञान हो गया।

सूरदास की भक्तिभावना

सूरदास की भक्ति भावना का मूल आधार आचार्य वल्लभ द्वारा प्रतिपादित 'शुद्धाद्वैतवाद' का सिद्धान्त है, जिसका आधार श्रीकृष्ण ब्रहम का सगुण-साकार स्वरूप है। उनकी भक्ति का आधारभूत तत्व उपरोक्त वैष्णवी भावना और वैष्णवी साहित्य है। वैष्णवी भाव और काव्य पर ब्रहम के अचिन्त्य विराट स्वरूप के चिन्तन-मनन के पीछे न भाग कर सहज मानवीय स्वरूप में उसे प्राप्त करने पर विश्वास करना है। सूरदास ने साकार विग्रहकारी श्रीकृष्ण के लीला बिहारी स्वरूप को वैष्णवी भावना से अनुप्राणित होकर ही अपनी भक्ति-भावना का आधार बनाया है।

सूर-साहित्य के अध्ययन से सूर की भक्ति-भावना के विविध पहलू दृष्टिगोचर होते हैं। अपनी भक्ति भावना में कविवर और भक्त प्रवर सूरदास ने स्वीकृत पुष्टिमार्ग को ही भक्ति साधना का सर्वोच्च मार्ग स्वीकार किया है। ऐसा स्वीकार कर उन्होंने अपने आराध्य देव श्रीकृष्ण के सभी मान्य सेव्य रूपों की आराधना के पद गाये हैं।

सूरदास की भक्ति-भावना में नवधा भक्ति में से 'सख्यभाव' की प्रधानता है, इस तथ्य को सभी स्वीकार करते हैं। उनकी सखाभाव पर आधारित एक विशिष्ट और अनन्य-प्रकार की है। जब उपासक अपनी निष्ठा भावना से स्वयं को श्रीकृष्ण के पुनीत चरणों में लीन कर समस्त विषयवासना से दूर होकर भक्ति करता है तभी उस अनन्य भाव की भक्ति का श्रीगणेश होता है। सूरदास की सख्याधारित भक्ति भाव की अनन्यता के क्रमशः विकास पर विचार करते हैं तो हम देखते हैं कि इस सीमा तक पहुंचने से पूर्व में उन्होंने निर्गुण भक्ति और साधना को भी अपनाया था। उनके द्वारा रचे अनेक पद्य उपलब्ध होते हैं -

"नैननि निरखि स्याम स्वरूप।

रह्यौ घट-घट व्यापि सोई ज्योति रूप अनूप।।"

इस क्रम में उन्होंने कहीं कई ब्रहमज्ञानियों के समान ही माया नामक तत्त्व का भी स्पष्ट उल्लेख व वर्णन किया है।

"झूठी है, सांची-सी लागत अस माया सो जानि।"

कहा जाता है आचार्य वल्लभाचार्य जी से भेंट से पूर्व उनके विनय एवं दास्य भाव के पद गाया करते थे। विनय भक्ति का अविभाज्य अंश है और सूरसागर का आरंभ विनय पदों से होता है -

'चरण कमल बंदौ हरि राई।'

सूर का तर्क विचारणीय है कि सगुण क्यो ? इसलिए कि निर्गुण अव्यक्त है, उसके रूप का ग्रहण सरल नहीं - उसका आस्वाद तो लिया जा सकता है, गूंगे के लिए मीठे फल के रस' की

तरह पर व्यक्त कर पाना कठिन है। सूर के प्रार्थना पदों में माध्यम से उनका जो समर्पण भाव व्यक्त होता है, उसकी ध्वनि यही प्रतीत होती है कि जीवन की सार्थकता हरि-भजन में है:

'जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै'

नहि अस जनम बारंबार', 'कीजै प्रभु अपने विरद की लाज' आदि। मूलतः वे प्रार्थना भाव में राधा-गोपी-ग्वाल-बाल-यशोदा को माध्यम बनाते हैं, जिनकी भावनाओं में भक्ति के उपादान संयोजित है, वात्सल्य से लेकर शृंगार तक। कृष्ण की चमत्कारिक लीलाएं - पूतना वध आदि के साथ उनका माखन-प्रसंग, गो-दोहन, गो-चारण, 'मुरली वादन', रास-प्रसंग है जो सूर के प्रमुख विषय रहे हैं।

सूर के काव्य क्षेत्र में शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का क्षेत्र आता है। दोनों में उन्होंने अपनी अद्वितीयता प्रदर्शित की है। रूप-वर्णन में वे अप्रतिम है। उपमाएं और उत्प्रेक्षा उनके इशारों पर चलती है। सर्जनात्मक कल्पना के वे अतिशय धनी है। नैत्रहीन होते हुए भी नेत्रों पर, उनकी बनावट और क्रियाओं पर उन्होंने ढ़ेरों पद लिखें हैं। कृष्ण और राधा तथा कृष्ण और गोप-गोपियों के प्रेम-व्यापार पर उन्होंने विशदता से लिखा है। ब्रज की प्रकृति और दैनंदिन जीवन के बीच चलने वाले इस प्रेम-व्यापार पर टिप्पणी करते हुए आचार्य शुक्ल ने उसे जीवन-महोत्सव कहा है। साहचर्य जन्य 'लरिकाई' की अवस्था से विकसित यह प्रेम अपने स्वरूप और चरित्र में वर्जनाहीन, नितान्त निष्कलुष हृदय की भीतरी गहराईयों से उपजा वह प्रेम है जो समय बीतने के साथ-साथ और भी गाढ़ा होता जाता है, और विप्रलंभ की अवस्था में तो वह नितान्त पारदर्शी होकर सामने आता है। उसकी चमक, उसका ताप और उसकी ऊर्जा, कभी कम नहीं होती। यह वह प्रेम है जो व्यक्तित्व को भीतर से निखारता है, उसे कान्ति और प्रभा प्रदान कराता है, मलिन नहीं करता। बड़ी मनोहर झांकियां सूर ने इस प्रणय-चर्या की दी है। रास लीला के प्रसंग में कृष्ण और गोपियों का प्रेम पराकाष्ठा तक पहुंचा दिखाई देता है, जीवन के राग से भरपूर, जहां मुक्तता ही मुक्तता है, मन की उन्मुक्ति, देह के कालुष्य से मुक्त इस प्रेम को लक्ष्य करके ही शुक्ल जी ने इसके तहत् गोप-गोपियों को पक्षियों की तरह स्वचछन्द कहा है।

सूर रससिद्ध कवि है, क्योंकि वे शृंगार के क्षेत्र में अपराजेय है। उन्होंने वियोग का त्रासद चित्रण ही नहीं, उस वियोग चित्रण के बीच से मानिनी नारी की, अस्मिता की जो छवि सूर ने उभारी है, उसका कोई भी मुकाबला नहीं है। संयोग से अधिक सूर ने विप्रलंभ का चित्रण किया है। वस्तुतः 'सूरसागर' विप्रलंभ का ही महासागर है। एक बार कृष्ण गोपियों को छोड़ मथुरा गए तो वे वापस गोकुल नहीं लौटते। यहीं से विप्रलंभ का प्रारम्भ होता है, वह अन्त तक चलता रहता है। कृष्ण की लीलाओं में सूर का मन उनकी बाल्यावस्था और किशोरावस्था की लीलाओं में विषेष रूप से रमा है। वात्सल्य के चित्रण में भी इतनी गहराई तक पैठे तथा उसकी इतनी विषदता तक गए हैं कि मात्र इनकी रचना के आधार पर वात्सल्य नामक भाव को रस की मान्यता देने की बात भी हिन्दी काव्य जगत में जोरों से उठाई गई।

वात्सल्य चित्रण सूर की ख्याति का मूलाधार है। कृष्ण की विविध बाल क्रीड़ाओं का वर्णन करते

हुए सूर अपने पाठकों को कृष्ण के ईश्वरीय रूप का बोध करा देते हैं। "बालक कृष्ण का गतिमय चित्रण, उनकी नाना छवियां उभारता है और उस राग भाव को विकास मिलता है, जो सूर का प्रतिपाद्य है।" सूर ने कृष्ण के बाल रूप को जहां भी और जितना भी उभारा है, प्रायः हमेशा और हर जगह कृष्ण के साथ यशोदा भी है। 'यशोदा हरि पालने झुलावे', 'सिखवत चलन जशोदा मैया', 'मुख छवि देखि हो नंदघरनि', 'ह्यं लगि नेकु चलौ नंदरानी' आदि ढ़ेरों पद माता और पुत्र के इस चिरन्तन सान्निध्य की गरिमा प्रदान करते हैं। यही नहीं, ढेरों पदों में कृष्ण के साथ यशोदा ही नहीं, नंद भी है और माता-पिता के शिशु प्रेम के सैकड़ों पदों के बीच से एक सुखी गृहस्थ जीवन की छवि निखर कर सामने आती है।

नारी के मातृत्व और गार्हस्थ धर्म की गरिमा से अभिभूत हुए बिना इस प्रकार के पदों की रचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वात्सल्य की एक-एक मनोदशा को, शिशु मनोविज्ञान की एक-एक बारीकी को, माता-शिशु तथा पिता और शिशु के सम्बन्धों की एक-एक रेखा को, विषय की सीमा में, जितनी गहराई, जितनी तन्मयता तथा जितने विस्तार से लगभग आत्मविभोर होकर सूर ने चित्रित किया है, उसे पुष्टिमार्गीय परम्परा के निर्वाह के साथ-साथ उनकी स्वस्थ सामाजिक चेतना और उनकी प्रखर मानवीय चिंता भी व्यंजित होती है। कृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात् समूचा गोकूल शोकमग्न है। राधा तो शोक संतप्त है ही, गोप-गोपियां ही नहीं, समूचा ब्रज जीवन, पशु-पक्षी, पेड़-पौध सब संतप्त है। विरह की शास्त्रीय दस दशाओं के रूढ़िबद्ध चित्रण के अलावा, कृष्ण की अनुपस्थिति में समूचे बदरंग ब्रज जीवन की मार्मिक छवियां उन्होंने प्रस्तुत की है।

प्रेम-भक्ति की परिपूर्णता के लिए सूरदास ने विरह को भी आवश्यक महत्त्व दिया है। चैतन्य सम्प्रदाय के प्रभाव से सूरदास ने प्रेम पर अवलम्बित रागानुग भक्ति भाव को पुष्टि के साथ आत्मसात् करके स्वीकारा और महत्त्व दिया है। इस रागानुगा भक्ति के दो भेद स्वीकारें गए हैं

1. कामरूपा रागानुगा भक्ति

2. सम्बन्ध रूपा रागानुगा भक्ति

इनमें से गोपियों की भक्ति पहली प्रकार की अर्थात् काम रूपा रागानुगा भक्ति है। तभी तो उन्हें हर क्षण बालकृष्ण की प्रतीक्षा, उनकी छेड़-छाड़ और लूट-खसोट की प्रतीक्षा रहती है। कृष्ण की वंशी की धुन कानों में पड़ते ही वे लोक-लाज, घर-परिवार की मर्यादाएं भूलभाल कर खिंची चली जाती है। इस प्रकार के उदाहरणों से सूरकाव्य भरा पड़ा है। दूसरी सम्बन्ध रूपा रागानुगा भक्ति का भी सूरदास ने अपने काव्य में यथेष्ठ वर्णन किया है।

निष्कर्ष

समग्रतः सूर की कविता मध्यकालीन भक्ति काव्य की अनूठी निधि है। सखा भाव, वात्सल्य रस आदि अपने सभी रूपों में कवि की भक्ति-भावना का अंग बनकर व्यंजित हुए हैं। दोनों के संयोग-वियोग पक्षों का हृदयग्राही वर्णन भक्त हृदयों को ही नहीं, सहृदय काव्य-रसिकों को भी रसलीन करके शुद्ध शुभ्र अश्रुओं से सिक्त कर देने की अपूर्व क्षमता से सम्पन्न किया है। नारी

शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 दिसम्बर 2013

की व्यथा-कथा और मुक्ति की उसकी आकांक्षा को मुख्यतः वात्सल्य और शृंगार तक ही सीमित है, किन्तु इस दायरे में भी नारी के जननी-रूप और उसके प्रेमिका-रूप को जिन विषद भूमिकाओं में उन्होंने उभारा है, उन्हें सूर की संवेदना और सोच की विशेष फलश्रुति माना जाना चाहिए। उनकी कविता भक्ति के पैमाने पर जितनी महत् और उदात्त है, काव्यत्व की कसौटी पर भी वह उतनी ही खरी, मार्मिक और उत्कृष्ट है।

सन्दर्भ

1. भक्तिकाल के प्रमुख कवियों का पुनर्मूल्यांकन - सम्पादक : डा.ओमप्रकाश त्रिपाठी, प्रा. लता शिरोडकर, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2004

2. भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य - शिवकुमार मिश्र, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005

3. सूर सरसि - व्याख्या - विष्णु विराट, ज्ञान गंगा, दिल्ली

4. भक्तिकाव्य का समाज दर्शन - प्रेमशंकर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2000

5. सूरदास की वार्ता - प्रभुदयाल मीत्तल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा

6. भक्ति आन्दोलन: इतिहास और संस्कृति, सं. कुंवरपाल सिंह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002

7. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2008

8. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा. नगेद्र, मयूर पेपर बैक्स, नोएड